प्रथम अध्याय

उत्तर औपनिवेशिकता: अभिलक्षण और आयाम

उत्तर औपनिवेशिकता संबन्धी विभिन्न अवधारणाओं और परिभाषाओं की खोज और विश्लेषण करने का प्रयास इस अध्याय में किया जाएगा। इसके निष्कर्षों के आधार पर उत्तर औपनिवेशिकता के स्वरूप और प्रमुख अभिकल्प लक्षणों की पहचान की जाएगी। साथ ही, इन अभिलक्षणों को लेकर समसामयिक हिन्दी उपन्यासों का अध्ययन किया जाएगा। प्रतिदर्श के तौर पर सुरेन्द्र वर्मा कृत 'मुझे चाँद चाहिए' का चयन किया जाएगा।

1.1. उपनिवेशवाद - उत्तर औपनिवेशिकता - नव उपनिवेशवाद

उपनिवेशवाद सत्रहवीं शती के अंतिम दशकों में उपजी हुई एक वाणिज्य-केन्द्रित प्रवृत्ति है। इसने दुनिया पर पश्चिमी राष्ट्रों के वर्चस्व के लिए भूमिका तैयार की। उपनिवेशित देशों की जनता हीनताग्रन्थि से ग्रस्त हो गई। प्रबल उपनिवेशकों की जीवन-शैली, भाषा, चिंतन, साहित्य, संस्कृति, शिक्षा आदि आदर्श और मानक बन गये। धीरे-धीरे उपनिवेशवाद ने गुलाम राष्ट्रों की भाषा, संस्कृति, कला, साहित्य आदि पर भी कब्जा डाल दिया। प्रशासन, शिक्षा, साहित्य आदि के माध्यम के तौर पर अंग्रेज़ी का एकाधिकार सिद्ध हुआ। लोकगीत, लोक भाषाएँ एवं बोलियाँ क्षीण होने लगीं।

उपनिवेशवाद पूँजीवादी राष्ट्रों द्वारा कमज़ोर देशों पर वर्चस्व कायम कर उनके आर्थिक संसाधनों के लूट में परिणत एक प्रक्रिया है। औपनिवेशक लूट और औद्योगिक क्रांति की वजह से यूरोपीय देशों में पूँजी-संचय की स्थिति उपस्थित हुई है। आलोचक लेनिन का तर्क है कि बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में पश्चिमी देशों में उपस्थित औद्योगिक क्रांति एवं वित्तीय पूँजी के विकास ने वहाँ पूँजी-संचय की हालत अदा की। इस पूँजी का विस्तार ही मौलिक स्तर पर उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद को जोडने वाली कडी है। अतः लेनिन, काउत्सकी आदि आलोचक उपनिवेशवाद को साम्राज्यवाद के पर्याय के रूप में देखते हैं। आलोचक जयप्रकाश का कहना है, "बीसवीं सदी के आरंभ में लेनिन ने औपनिवेशिक दौर के साम्राज्यवाद की विशेषताओं का गंभीर अध्ययन किया। उन्होंने 'पूँजी के निर्यात' को उसकी प्रमुख विशेषता बताया था।"[१] उपनिवेशवाद का ध्येय उपनिवेशित देशों के संसाधनों पर कब्जा करना था।

उपनिवेशवाद का मतलब है किसी राज्य की भौतिक संपत्ती का विनियोजन, वहाँ के श्रमिक का शोषण, राजनीतिक संरचना पर घुसपैठ आदि। साम्राज्यवाद एक वैश्विक व्यवस्था है जहाँ साम्राज्य का केंद्रक ही उपनिवेशित देशों पर शासन करता है। आलोचक अवधेश कुमार सिंह के शब्दों में, "किसी दूरस्थ क्षेत्र पर शासन कर रहे किसी प्रबल महानगरीय केन्द्र के सिद्धांत, व्यवहार और दृष्टिकोण का नाम साम्राज्यवाद है। उपनिवेश बहुधा साम्राज्यवाद एवं दूरस्थ क्षेत्रों में उपनिवेश कायम करने का परिणाम है।"[२] उपनिवेशवाद में उपनिवेशक, उपनिवेशितों को सिर्फ वस्तु

मानता है, जो अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के मात्र उपकरण हैं। इस गुलामी व्यवस्था के बीच उपनिवेशित अपनी अस्मिता की पहचान में उपनिवेशकों से प्रतिरोध एवं संघर्ष करने लगते हैं। परिणामस्वरूप, देश स्वतंत्र हो जाता, मगर आगे अपनी संस्कृति एवं अस्मिता विकसित करने में नयी चुनौतियों का सामना करना पडता है। इस परिप्रेक्ष्य में उपनिवेशित देशों में मौजूद हालत ही गैर-उपनिवेशित मानी जाता है। सन् १९५० के आसपास ब्रिटन के उपनिवेशित (श्रीलंका, आफ्रिका, एशिया, कोरिया आदि) देशों ने अपने प्रतिरोधात्मक व्यवहार से ब्रिटन के प्रभुत्व को नकारा और वे उपनिवेशक शक्तियों से मुक्ति पाने में सफल हुए और अपने को शासन का अधिकारी मानने लगे। औपचारिक तौर पर आज़ाद होने की स्थिति को उत्तर औपनिवेशिक कहा जाता है।

दूसरे विश्व-युद्ध के बाद ब्रिटन का प्रभुत्व विश्व की आर्थिक एवं सत्तात्मक शक्ति के रूप में क्षीण होने लगा। अमेरिका और सोवियत संघ अपनी सैनिक एवं सत्तात्मक शक्ति से प्रबल होने लगे। सन् १९८० में अमेरिका ने अपनी वर्चस्वशाली शक्ति से सोवियत संघ के प्रभुत्व को समाप्त कर दिया। अमेरिका उच्चशिक्षा और विशिष्ट प्रौद्योगिकीय संस्तरों के लिए प्रशिक्षण के बौद्धिक केन्द्र में बदल गया। सूचना-उद्योग के क्षेत्र में सबसे प्रबल प्रभावपूर्ण शक्ति के रूप में अमेरिका ने 'तीसरी दुनिया' पर विचारधारात्मक वर्चस्व रख दिया। यही नव उपनिवेशवाद में परिणत हुआ। हकीकत नव-उपनिवेशवाद ने आर्थिक शक्ति के सहारे राजनीतिक-सामाजिक नियंत्रण और शोषण का जाल फैलाया है। औपनिवेशिक दौर के साम्राज्यवाद की

तरह नव उपनिवेशवाद की प्रमुख विशेषता है - पूँजी का निर्यात। इसके परिणामस्वरूप दुनिया के प्राकृतिक संसाधनों पर कब्जा करने की हालत मजबूत होती है।

उत्तर औपनिवेशिकता का एक आयाम औपनिवेशिकता के पश्चात् उपनिवेशित देशों की कला, भाषा, साहित्य, संस्कृति आदि के स्तर पर हुए सशक्तीकरण का है तो दूसरा आयाम बाज़ारीकरण और उदारीकरण से उत्पन्न विश्वग्राम की संकल्पना का है। दोनों स्तरों पर कला, समाज, परिवार, नारी और दलित संबन्धी विचारों की पुनर्व्याख्या और पुनर्रचना हुई हैं। उपनिवेशित देशों की जागृति के परिप्रेक्ष्य में बिल आशक्रोष्ट जैसे आलोचक गण की परिभाषा है "उत्तर औपनिवेशिकता, उपनिवेशीकरण से आज तक के साम्राज्यवाद से प्रभावित सारे सांस्कृतिक परिणामों की ओर संकेत है।"[३]

विश्वग्राम के समर्थन में भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ प्रस्तुत की गई हैं - आलोचक डेरलिक का कहना है - "उत्तर औपनिवेशिकता वैश्विक पूंजीवाद की समग्रता की स्थिति है।"[४]

चिंतक फ्रेडरिक फेनन के शब्दों में - "यदि उत्तर आधुनिकता वृद्ध-पूँजीवाद का सांस्कृतिक तर्क है तो उत्तर औपनिवेशिकता में इसका विस्तृत रूप में अनुप्रयोग हुआ है।"[५]

आलोचक लीला गाँधी के अनुसार - "उत्तर औपनिवेशिकता सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक वैश्वीकरण के लिए प्रयुक्त किया गया एक दूसरा नाम है।"[६]

उत्तर औपनिवेशिकता एक व्यापक संवेदना है जिसके अन्तर्गत उत्तर आधुनिकतावाद, उत्तर संरचनावाद, विखण्डनवाद आदि कई प्रवृत्तियाँ मौजूद हैं।

1.2. उत्तर आधुनिकतावाद

उत्तर आधुनिकतावाद के समीक्षकों ने इस पद का प्रयोग इकहरी स्थिति में नहीं किया है। उनके अनुसार यह एक फिसलनदार पदावली है, जो स्वयं समग्रता का विरोधी हो। यह एक भौतिक, सामाजिक अवस्था है, ज्ञान की दशा है और विकसित पूँजीवाद की एक सर्वव्यापी सांस्कृतिक, आर्थिक स्थिति है। सैद्धांतिक फ्रेडरिक जेमसन के अनुसार उत्तर आधुनिकतावाद, 'वृद्धपूँजीवाद का सांस्कृतिक तर्क है', इसलिए यह स्वाभाविक है कि वे अपने समूचे विमर्श के केन्द्र में संस्कृति को रखते हैं।

जेमसन ने 'वृद्धपूँजीवाद का सांस्कृतिक तर्क' में उत्तर आधुनिकता के समाजशास्त्रीय, अर्थशास्त्रीय पहलू पर चिंतन किया है। आलोचक सुधीश पचौरी का मत है "वे इस सांस्कृतिक परिवर्तन को पूँजीवाद के नए चरण से जोडते हैं। यह पूँजीवाद 'वृद्धपूँजीवाद' - 'लेट कैपटलिज़म' है।"[७] सौन्दर्यशास्त्रीय दार्शनिक-प्लोयतार की राय में उत्तर आधुनिकता उच्च-विकसित समाजों में पिछले दशकों में बनी एक ज्ञान अवस्था है। सुधीश पचौरी का कहना है, "यह उन्नीसवीं सदी के बाद बहुत से परिवर्तनों के फलस्वरूप बनी उस सांस्कृतिक अवस्था को बताता है जिसने विज्ञान, साहित्य और कलाओं के लिए लगभग अंतिम मान लिए गए खेल के नियमों को

पलट दिया है।"[८] उत्तर आधुनिकतावाद की कोई समग्रतावादी या सकलतावादी परिभाषा संभव नहीं क्योंकि यह स्वयं समग्रतावाद का विरोधी है।

1.3. उत्तर संरचनावाद

उत्तर संरचनावाद सिर्फ एक पद्धति के रूप में नहीं, बल्कि दार्शनिक विचारधारा के स्तर पर रूपायित हुआ है। फ्रांस में सातवें-आठवें दशक में विकसित यह विचारधारा विश्व के बौद्धिक वातावरण की निर्णायक आवाज़ है। उत्तर संरचनावाद को उत्तर औद्योगिक युग की रणनीति या औद्योगिक सामाजिक संरचना का विखंडन भी कहा जा सकता है। उत्तर संरचनावाद भाषा के क्षेत्र में निजता, तादात्म्य और अर्थ के पुराने सोच को खंडित करता हुआ आया है। उत्तर संरचनावाद, उत्तर आधुनिक राज्यसत्ता व समाज का उत्पाद है। इसलिए वह विराट विखंडन में ही अपनी सिद्धि प्राप्त करता है। उत्तर-संरचना ने सातवें दशक के मध्य से कई अनुशासनों एवं विषयक्षेत्रों को प्रभावित किया है। लांकाँ ने मनोविज्ञान में, मिशेल फूको ने सांस्कृतिक क्षेत्र में, और लुई अल्थूसर ने सिद्धांत के क्षेत्र में उत्तर संरचनावादी विचार का अनुप्रयोग किया। उत्तर संरचनावादी विचारधारा में सबसे निर्णायक भूमिका सातवें दशक के मध्य में जॉक देरीदा की रही। उन्होंने 'स्पीच एंड फिनोमिना', 'रैटिंग एंड डिफरांस' तथा 'ओफ ग्रामटोलजी' जैसे लेखों से भाषिक विचारों की पुनर्व्याख्या की जिसका असर 'पाठ' या 'टेस्ट' पर पडा। जॉक देरीदा के भाषिक चिंतन कला, साहित्य और समाज के विश्लेषण में क्रांतिकारी परिवर्तन लाये। कला और साहित्य की केंद्रक संरचना पर प्रश्न चिह्न लगाकर देरीदा के विखंडनवाद ने भाषिक कथ्य और अभिव्यक्ति के संबन्ध की पुनर्परिभाषा की।

1.4. उत्तर औपनिवेशिकता

उपनिवेशित सिद्धांतिकी के तौर पर मनोवैज्ञानिक एडवेर्ड सइद ने 'प्राच्यवाद' में सबसे पहले उपनिवेशितों एवं उपनिवेशकों के लिए 'उत्तर औपनिवेशिक' पद का प्रयोग करना शुरु किया। सन् १९९० में भारतीय समीक्षक गायत्री स्पिवाक ने 'उत्तर औपनिवेशिक' पद का प्रयोग उपनिवेशितों से संबन्धित भेंटवार्ताओं एवं तर्कों के संग्रह के लिए प्रयुक्त किया है। उपनिवेशितों के संकेत में प्रयुक्त यह पद खास तौर पर उपनिवेशित समूहों के सांस्कृतिक तर्कों से रिश्ता जोडता है। बिल आशक्रोफ्ट जैसे आलोचक के अनुसार, "यह पद व्यापक तौर पर उन जन-समुदायों के राजनीतिक, भाषिक और साँस्कृतिक अनुभवों की ओर संकेत करता है जो यूरोप के पूर्ववर्ती उपनिवेश रहे"[९] फलस्वरूप उत्तर औपनिवेशिक पद का प्रयोग औपनिवेशिकता एवं गैर-औपनिवेशिकता के बाद की तमाम विचारधाराओं को सूचित करने केलिए होने लगा है।

आलोचक प्लोयतार, जेमसन, फेनन आदि के अनुसार उत्तर औपनिवेशिकता कई दमित आवाज़ों की अभिव्यक्ति है। समीक्षक गायत्री स्पिवाक ने उत्तर औपनिवेशिक सिद्धांतों के लिए 'सबाल्टेन' की संज्ञा दी है। उन्होंने 'Can the subaltern speak?' में दलित चेतना को उत्तर औपनिवेशिकता का केन्द्रक माना है। आलोचक कृष्णदत्त पालीवाल का बयान है, "उत्तर आधुनिकतावाद का पूरा सोच 'सबाल्टेन' पिछडे-दमित वर्ग के साथ है। क्षेत्रीय आदिवासी संस्कृतियाँ मुख्यधारा की संस्कृति में अपना समानजनक का स्थान पाने का प्रयत्न कर रही है।"[१०]

भारतीय आलोचकों केलिए उत्तर औपनिवेशिक सिद्धांत, असमान और असमतल शक्तियों के सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व की गवाही है जो आधुनिक युग में सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश की प्रतियोगिताओं में प्रतिबिंबित हैं। सन् १९८० में उत्तर औपनिवेशिक सिद्धांत दो उपेक्षित वर्ग नारी और दलित को केंद्रक मानते हुए समाज को अवगत कराने में सक्षम निकले हैं। इनमें नारी के 'दुहरी उपनिवेश' के बारे में कहा गया है - पितृसत्तात्मक एवं साम्राज्य शक्तियों के नज़रिया से प्रबल हैं। गायत्री स्पिवाक, सारा सुलेरी जैसी लेखिकाओं ने भी अपनी रचनाओं के द्वारा समान सामाजिक स्थिति को पाठकों के सामने प्रस्तुत करने की कोशिश की है।

1.4.1. उत्तर औपनिवेशिकताः लक्षण और प्रवृत्तियाँ

उत्तर औपनिवेशिकता की कई बहुआयामी प्रवृत्तियाँ हैं। नारी तथा दलित विषयों का अध्ययन, बहुलतावाद, विकेन्द्रीयता, विज्ञापन, पॉपुलर कल्चर, बाज़ारवाद, वृद्धपूंजीवाद, बहुराष्ट्रीयनिगम, अतियथार्थवाद आदि इसमें प्रमुख हैं।

नारी विमर्शः उपनिवेश में नारी दमित की हैसियत में थी। पितृसत्तात्मक एवं उपनिवेशकों की ओर से - दुहरी औपनिवेशिकता वह भोग रही थी। उत्तर औपनिवेशिक परिप्रेक्ष्य में नारी की आवाज़ पर प्रमुखता देने की प्रवृत्ति मजबूत हो रही है।

बहुलतावादः एक ही समाज-व्यवस्था या दर्शन के भीतर भिन्न-भिन्न लोगों, मतों, सिद्धांतों की विविधता की मौजूदगी ही बहुलतावाद है। व्यावसायिकता बहुलतावाद का सहगोत्रीय है। यह समूहों से जुडा है। इसमें अर्थशास्त्री, वैज्ञानिक या बाबू सब बराबर है।

विकेंद्रीयता: यह केंद्रवाद का निषेध है। समाज के विभिन्न समूह जो अभी तक हाशिए पर रहे हैं जिसकी अस्मिता और आवाज़ को निरंतर दबाया गया है - ये दलित - दमित समाज उत्तर औपनिवेशिक चिंतन का महत्वपूर्ण विषय है। यह 'दलित लेखन' के नाम से मुखरित है।

विज्ञापन: भूमंडलीकरण के दौर में विज्ञापन की विशिष्ट भूमिका रही है। उपभोक्ता वस्तुओं को अधिक से अधिक आकर्षक बनाने की होड में विज्ञापन लगे रहते हैं। बडी-बडी कंपनियों ने अपने खुद के विज्ञापन विभाग खोल लिए हैं और कुछ विभाग नित नए लुभावने विज्ञापनों को प्रस्तुत करने की योजना में लगे हैं। मीडिया केन्द्रित सामाजिक व्यवस्था में विज्ञापन और समाचार का भेद मिट गया है।

बाज़ारवाद: यह भूमंडलीकरण के परिणामस्वरूप उदारीकरण और निजीकरण से उपजी एक हालत है। बाज़ारवाद के विमर्श में उदारीकरण का प्रयोग संस्कृति की चिरंतन युक्ति के रूप में न होकर विपणन की नई प्रयुक्ति के रूप में होता है। इसके नाते तमाम आयामों को बिक्री के माल की दृष्टि से नापने की स्थिति उपस्थित हुई है।

पॉपुलर कल्चर: सामयिक संस्कृति में कला की स्वायत्तता घटने के साथ-साथ कल्पनाशीलता और आलोचनात्मक चेतना भी कमज़ोर हो गई है। कला और सौदंर्यबोध की रचना और प्रचार में संचार-माध्यमों की विशिष्ट भूमिका रही है। मीडिया बाज़ार-तंत्रों के अनुरूप कला-कृतियों का उत्पादन कर रही है।

वृद्धपूँजीवाद: यह नव-साम्राज्यवाद का अगला चरण है। जेमसन ने 'उत्तर आधुनिकता:

वृद्धपूँजीवाद का सांस्कृतिक तर्क' में इस हालत का विचार-विमर्श किया है। यह पूँजी का नया खेल है जो बहुराष्ट्रीय निगमों का भूमंडलीकृत बाज़ार है। यह उत्तर औपनिवेशिक पूँजीवाद का सांस्कृतिक तर्क है, जहाँ शैलियों का तेज़ चक्र, फैशन का परिवर्तित रूप, विज्ञापन की ताकत, इलक्ट्रॉनिक मीडिया की शक्ति आदि मिलकर नई संस्कृति की विभक्तियों को निर्मित करती हैं और इतिहासबोध को धुंधुलाती हैं।

बहुराष्ट्रीय निगमः यह सत्ता का केंद्र बदलने की स्थिति है। सत्ता सूचना और उसके वितरण के क्षेत्र में पहूँच गई है। प्रौद्योगिकी और बहुराष्ट्रीय निगमों का विकास साथ-साथ हुआ है। विकसित देशों ने अविकसित एवं अर्द्धविकसित देशों का नक्शा बदल डाला है, यह बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा संभव हुआ है। यह समाज के भीतरी राग-रेशे में निगमों की गवाही है।

अतियथार्थवादः दार्शनिक बौद्रिआ ने माध्यम द्वारा संदेश को 'तटस्थ' कर देने की 'क्षमता' की बात उठाई है। वर्तमान समाज में चिह्नों के सत्यापन के लिए वास्तविक दुनिया की जरूरत नहीं होती जिसका वे प्रतिनिधित्व करते हैं। 'प्रातिनिधिकता' की प्रक्रिया 'छलना' में बदल जाती है। यहाँ यथार्थ ही पुनर्निमित होने लगता है। यह हर माध्यम में अलग रूप से, अलग ढंग में होता है।

संक्षेप में उत्तर औपनिवेशिकता का एक आयाम उपनिवेशवाद की प्रतिक्रिया से उपजी हुई मानसिकता का है तो दूसरा आयाम वैश्वीकरण से उत्पन्न

बाज़ार तंत्र का है। प्रथम आयाम का संबन्ध 'तीसरी दुनिया' कहे जानेवाले उपनिवेशित राष्ट्रों की भाषा, संस्कृति, विचारधारा, दर्शन आदि के संवर्द्धन की प्रक्रिया से है तो, दूसरा बाज़ार तंत्र के तत्वों से अनुकूलित संचार-माध्यमों से संबन्धित है। दोनों स्तरों पर समाज, संस्कृति, हाशिएकृत आदि से संबन्धित नई विचारधाराएँ प्रकट होती हैं। पर दोनों का लक्ष्य अलग-अलग है।

1.4.2. उत्तर उपनिवेशवाद और भाषिक चिंतन

उत्तर औपनिवेशिक भाषिक चिंतन विशेष पृष्ठभूमि लेकर आये हैं। दार्शनिक जॉक देरीदा के दर्शन में 'भाषा' की समस्या सबसे पहले उठती है। वे पश्चिमी दर्शन की वाक्-केन्द्रिकता (logo centrism) को खारिज करते हैं। इसके बदले 'हेडगर' और 'ब्लांचों' के 'भेदवाद' को भाषा में सक्रिय मानते हैं जिसे विखंडन कहा गया है। वे मानते हैं कि वाक् अन्तर्वस्तु है और लिखित भाषा सिर्फ बाह्य रूप। लेकिन देरीदा इस वाक्-केन्द्रिकता को चुनौती देते हैं। वे सस्यूर और रूसो की अवधारणाओं में विसंगतियाँ दिखाते हैं और ध्रुवीय बहस से मुक्त करते हैं। वे मानते हैं कि भाषा का मूल 'लेखन' है, 'वाक्' नहीं। उनका समर्थन है - लेखन एक साथ आंतरिक और बाह्य होता है, इसे दुहराया जा सकता है, संदर्भ से अलग उद्धरण किया जा सकता है और प्रत्येक चिह्न दूसरे से अलग है। सुधीश पचौरी का कहना है, "देरीदा के लिए 'लेखन' भाषा की पूर्वशर्त है। वह वाक् से पहले मौजूद रहता है। लेखन देरीदा के लिए एक स्वतंत्र खेल या लीला है। लेखन इसलिए अर्थ का अनंत तबादला है जो भाषा का अनुशासन करता है।"[११]

देरीदा ने किसी भी 'पाठ' को विखंडित कर अप्रत्याशित अर्थों तक जाने की एक नयी दृष्टि दी। आलोचक विजयकुमार का मत है, "विखंडनवाद किसी भी फिनोमिना की 'संघटना' में कार्यरत विभिन्न संरचनाओं का एक सतत संघर्ष देखता है। वह 'पाठ' के आंतरिक ढांचे में प्रवेश करता है। वे पाठ के भीतर छिपे हुए उप-पाठों को प्रकाश में लाते हैं। वे कहते हैं कि कृति का अर्थ वह है जो पाठक अपने ढंग से उसके भीतर रचते हैं।"[१२] 'पाठ' एक गतिशील 'फिनोमिना' है उसका कोई अंतिम या स्थिर अर्थ नहीं होता।

देरीदा के लिए विखंडन की रणनीति एक समग्र और संपूर्ण मान ली गयी संरचना को भेदने और उसमें छिपे हुए अंतर्विरोधों को पकडने, गूढ संकेतों का अनावरण करने का रवैया है उनके अनुसार भाषा अनंत रूप से जटिल और दुःसाध्य माध्यम है। कुति की भाषिक संरचना की असंख्य व्याख्यायें हो सकती हैं। विखंडन की यह दृष्टि परंपरा से चली आ रही अवधारणाओं को चुनौती देती है। रोला बार्थ, पोल डी मान जैसे समीक्षकों ने विखंडनवाद के अन्य पहलुओं (लेखक का अंत, अंतर्पाठीयता) पर अपना तर्क प्रस्तुत किया है।

1.4.3. उत्तर औपनिवेशिक संदर्भ में कला और साहित्य

आर्थिक उदारीकरण की वजह से रूपायित सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश के फलस्वरूप साहित्य और कला प्रांतीय खासियतों को उजागर करने में सक्रिय दिखाई पडती हैं। अतः उत्तर औपनिवेशिक साहित्य, साम्राज्यवादीय सत्ताओं के उपनिवेश के कारण उपस्थित तनावपूर्ण परिवेश की अभिव्यक्ति है और साथ ही

वैश्वीकरण से उत्पन्न सामाजिक पारिवारिक जीवन की अस्थिरताओं का पर्दाफाश भी है।

उत्तर औपनिवेशिक साहित्य हर तरह के 'केंद्रवाद' का निषेध करता है। उसकी यात्रा केन्द्र से बाहरी स्तरों की ओर है। आलोचक अनिया लुंबा के शब्दों में, "उत्तर औपनिवेशिक सिद्धांत की केन्द्रीयता स्थानीय या प्रतिष्ठित स्थापनाओं से व्यक्ति और उसकी व्यक्तिपरकता में बदल गयी है। इस अर्थ में उत्तर औपनिवेशिकता किसी भी जगह के किसी भी समाज की स्वायत्तता एवं स्थानीयता को प्रमुखता देनेवाली अस्थिर स्थिति का संकेत है।"[१३] समाज के विभिन्न समूह जो हाशिए पर रहे हैं, जिनकी अस्मिता और आवाज़ निरंतर दबायी गयीं उन्हीं की प्रतिष्ठा यहाँ द्रष्टव्य है। यहाँ दलित और नारी अस्मिता, जातीय या क्षेत्रीय अस्मिता केंद्र में आती है। मैत्रेयी पुष्पा के 'इंदन्नम' नारी एवं दलित अस्मिता की गवाही है। 'विकेंद्रीयता' का एक अन्य पहलू क्षेत्रीयता से जुडकर दीखती है। यहाँ स्थानीयता या क्षेत्रीयता पर ध्यान देते हुए अपनी जडों की ओर लौटने की स्थिति कायम रखती है। राही मासूम राजा के 'आधा गाँव' एक प्रदेश विशेष के मुसलमानों की समस्याओं को शब्दांकित करता है। उपन्यासों में विशेष क्षेत्र या जाति के अनुकूल भाषायी प्रयोग होता है। पुरानी मानक शैलियों को खारिज करने की हैसियत यहाँ मज़बूत है।

उत्तर औपनिवेशिक साहित्य का एक बडा कलात्मक उद्यम पैरोडी बनाना है। पैरोडी 'अन्तर्पाठीयता' का व्यंग्यात्मक रूप है जिससे इतिहास को उलट-पुलट किया गया है। यहाँ पुराण, इतिहास और विज्ञान सब एक दूसरे से संवाद

करते हैं। मनोहर इयाम जोशी के 'कुरु-कुरु-स्वाहा' उपन्यास में, साहित्य और फिल्म-उद्योग एक दूसरे से संवाद खतम करते हुए विद्यमान है। इसमें मौजूद स्त्री, काले, स्थानीयतावादी, समलैंगिक, 'अन्य' आदि उत्तर औपनिवेशिक साहित्यिक प्रवृत्तियाँ विकेंद्रियतावादी सिद्धांत का द्योतक है।

उत्तर औपनिवेशिक संदर्भ में कला और साहित्य पण्य है, उपभोग्य है। कला और कलाकार अब बाज़ार और सत्ता के मूल्यांकन के आधार पर पहचाना जाते हैं। लेखक की प्रतिष्ठा और लोकप्रियता का मानक सत्ता के व्यक्तिगत और आत्मगत पहलुओं के साथ जुडे हैं। जो लेखक बाज़ार और सत्ता के गलियारों से सफल है वही अकादमिक जगत में भी सफल है। पात्र, समय और स्थान संबधी अवधारणाएँ अप्रासंगिक हो चुकी हैं।

बाज़ार और सूचना उत्तर औपनिवेशित कला का औजार है जो यथार्थ और कल्पना का भेद मिटाता है। साहित्य और कला का अंतर यहाँ मिट जाता, साहित्य अखबार है, सूचना है, विज्ञापन है। कला-एक ही समय कला है, सूचना है, विज्ञापन है। उत्तर औपनिवेशिक कला स्वायत्तता, भव्यता, पवित्रता आदि अवधारणाएँ तोडती है। फिल्में इसका अन्यतम उदाहरण हैं, जहां सीमाएँ टूटती रहती हैं। ब्रोद्रिआ के 'छलना सिद्धांत' का सर्वाधिक प्रभाव इस क्षेत्र में द्रष्टव्य है। 'छलना' - चिह्नों के संसार है। यह 'अति-यथार्थ' नई अवधारणा है, वर्तमान संस्कृति है। विज्ञापनों एवं मॉडलों के संसार में रंगों एवं प्रकाश का प्रभावी ढंग से प्रयोग जनसंचार संस्कृति को जन्म देता है।

1.4.4. उत्तर औपनिवेशिक साहित्यिक प्रवृत्तियाँ

उत्तर औपनिवेशिक रचनाकार अपनी रचना में सौंदर्यात्मक, कलात्मक और राजनीतिक यथार्थ के बीच, पाठ और इतिहास के बीच रचनात्मक तनावों को रेखांकित करने में सक्षम है। वह ज़िदगी और कला को एकमेक देखता है। यहाँ तथ्य तथा कल्पना की सीमाएँ खतम हो जाती हैं। प्रमुख उत्तर औपनिवेशिक साहित्यिक प्रवृत्तियाँ हैं - नारी मुक्ति, वैश्वीकरण, बाज़ारवाद, विज्ञापन, पॉपुलर कल्चर, अति यथार्थवाद, वृद्ध पूंजीवाद, बहुराष्ट्रीयनिगम आदि।

1.4.4.1. नारीमुक्ति

उपनिवेशितों के समान कई समूहों में पितृसतात्मक प्रभुत्व ने नारी को 'गैर' का स्थान दिया है। इस ढांचे से नारी कई उपनिवेशित नस्लों और संस्कारों से राजनीतिक दमन और विरोध का अनुभव महसूस कर रही है। औपनिवेशिक नारी विमर्श पुरुष प्रभुत्व के द्वारा हाशिएकृत नारी को पुनः सामाजिक धारा में प्रतिष्ठित करने का रवैया है। नारी की दुहरी उपनिवेशित होने की स्थिति उपनिवेशित एवं पितृसत्तात्मक विचारधाराओं से बनी हुई है। स्त्री का समाज के केंद्र में आना, हमारे आर्थिक सामाजिक विकास का परिणाम माना गया है। महादेवी वर्मा की राय बिलकुल संगत है कि "कोई नियम, कोई आदर्श, सब काल और परिस्थितियों के लिए नहीं बनाया जाता। सबमें समय के अनुसार परिवर्तन संभव ही नहीं अनिवार्य हो जाते हैं।"[१४] पिछले दस-पंद्रह वर्षों से भारतीय समाज में महिलाओं के विकास

पर विशेष ध्यान दिया गया है। स्त्री की अस्मिता की तलाश में उत्तर औद्योगिक समाज का योगदान सराहनीय है।

उत्तर औपनिवेशिक समाज की एक प्रबल प्रवृत्ति है - नारी मुक्ति। हज़ारों सालों से समाज में प्रबल हुए पुरुष वर्चस्व की विरोधी प्रवृत्ति है - नारी-मुक्ति आंदोलन। इसका मकसद है नारी-अस्मिता को स्वतंत्र-स्वायत्त सत्ता के रूप में पहचानना। यहाँ स्त्री की संपूर्ण अंतरंग और बहिरंग चेतना को समझने का प्रयास हुआ है। इस प्रयास में आवरणों एवं बंधनों को भेदकर बाहर आयी स्त्री का मन, स्त्री की सोच, दृष्टि, समस्याओं, स्थितियों और मनस्थितियों का विश्लेषण विद्यमान है। सामाजिक, पारिवारिक, आंतरिक दबावों के बीच जीती स्त्री की अस्मिता को पहचानने का प्रयास ही प्रमुख उत्तर औपनिवेशिक साहित्यक प्रवृत्ति रही है।

सामयिक सूचना-क्रांति से उपजी दृश्य-मीडिया की चकाचौंध से स्त्री की हैसियत काफी जटिल हो गई है। आर्थिक स्वावलंबन के इरादे में बाज़ार के सामने स्त्री का झुकाव जाने-अनजाने उसे बाज़ार का हिस्सा बना देता है। उपभोक्ता संस्कृति के सामने घुटने टेककर वे अपनी मान्यताओं को खो देती हैं। स्त्री-जीवन में बढती इन पेचीदगियों के बावजूद नारी नयी दिशाएँ खोजती है।

1.4.4.2. वैश्वीकरण

पूंजीवाद की तात्कालिक एकछत्रता का उद्‌घोष है - वैश्वीकरण। एक केंद्रीकृत विश्वबाज़ार की ओर संक्रमण पूंजीवाद के तर्क में शुरु से ही अन्तर्निहित

था। बाज़ारीकरण के तौर पर रूपायित 'विश्वग्राम' की परिकल्पना के पीछे यथार्थ गांव के विच्छेदन एवं विस्थापन की स्थिति है। साथ ही इसकी प्रतिबद्धता केवल बाज़ार की मांगों की पूर्ति में परिलक्षित है। इस सिलसिले में उत्तर पूँजीवादी व्यवस्था और इसकी उपभोक्तावादी संस्कृति को संसार के तमाम भागों पर लादने का प्रयास हो रहा है। विशाल फार्मों का विकास होता है जिसमें नई जैविक तकनीकों का बडे पैमाने पर प्रयोग होता है। इसके साथ-साथ वे विनिमय की गति को तेज़ करने में सक्रिय दीखते हैं। इससे नए संचार-माध्यमों का खूब विकास होता है। हालांकि इससे यह भ्रम पैदा होता है कि संसार के लोग जुड रहे हैं और संसार एक 'वैश्विक ग्राम' बन गया है। असल में प्रत्येक क्षेत्र और देश में नए संचार-माध्यमों से जुडे समूह अपने ही आस-पास के बहुसंख्यक वंचित समूहों से पूरी तरह कट जाता है। संसार का एक नया विभाजन, सूचना समृद्ध और सूचना से वंचितों के बीच होता है।

वैश्वीकरण में व्यक्ति और समाज, विश्व के विस्तार से कार्यरत होकर आर्थिक एवं सांस्कृतिक शक्तियों से प्रभावित होते हैं। हकीकत यह विश्व की सिकुडने की स्थिति है, एक स्थान में होने की स्थिति है। वैश्वीकरण से राष्ट्र की प्रमुखता एवं प्रतिष्ठा कम हो जाती है, व्यक्ति और समाज विश्व में प्रसारित ज्ञान एवं संस्कृति से आसानी से लाभान्वित हो रहे हैं। वैश्वीकरण का संरचनात्मक पहलू राज्य और देश ही है जिस पर अतर्राष्ट्रीय परियोजनाएँ (आर्थिक नीति, संचार योजना आदि) आधारित हैं।

आलोचक अनिया लुंबा के अनुसार "उत्तर औपनिवेशवादी अध्ययन संकरण, 'क्रयोलाइसेज़न', 'डायस्पोरा' एवं सीमाबद्धता के मुद्दों का गतिशीलता में पूर्वव्यस्त होना और उपनिवेशवाद द्वारा प्रतिष्ठित विचारों तथा पहचानों को पार करना है।"[१५] यह सांस्कृतिक साम्राज्यवाद या नव-साम्राज्यवाद के आयामों से परिवर्तित होता है। यह संकरण, फैलाव और सापेक्षिकता के विश्लेषणात्मक अध्ययन और वैश्विक समूहों के अन्तर्सबन्ध, विश्व की सिकुडन आदि विश्व की संपूर्ण चेतना से संबन्धित हैं। इसके फलस्वरूप विश्व-पूँजीवाद के देशी प्रांतों से संबन्ध, प्रतिरोध, एवं मुक्ति का प्रसंग उपस्थित होता है। विश्व-पूँजीवाद, वृद्धपूंजीवाद आदि इस मुद्दे के विभिन्न प्रसंग हैं।

वैश्वीकरण के देशीय-परिवर्तन के सहज भाव से देशीय अस्मिता, मिश्र-वर्ग, संकरण, फैलाव आदि मुद्दे भी विचार करने योग्य हैं। उपभोक्ता समाज और बाजारीकरण विश्व-पूँजीवाद और आर्थिक उदारीकरण के नतीजतन रूपायित दो आयाम हैं जिसके प्रभाव से बहुराष्ट्रीय निगम, वृद्धपूंजीवाद, अतियथार्थवाद जैसै उत्तर औपनिवेशिक अभिलक्षण यहाँ अपने पैर फैलाए हैं। सामाजिक व्यवस्था इस दौर में अग्रसर होती जा रही है।

1.4.4.3. बाज़ारवाद

भूमंडलीकरण के दौर में विश्व-पूँजीवाद और आर्थिक उदारीकरण के अंतरंग संबन्धों की परिणती है बाज़ारवाद। इसके चलते साहित्यिक या कलात्मक सृजन, दार्शनिक चिंतन, वैज्ञानिक अनुसंधान, ज्ञान और शिक्षा का प्रसार, समाज-

सुधार, राजनीतिक परिवर्तन आदि व्यापक मानवीय उद्देश्यों से किए जानेवाले कार्य भी सीमित व्यापारिक उद्देश्यों की पूर्ति मानी जाती हैं। इसकी सफलता के लिए आपस में सिद्धांतहीन समझौते, अनैतिक गठबंधन, आदि उचित और अवश्यक माने जाते हैं। इस प्रकार बाज़ार का अनंत प्रभाव जाने-अनजाने हमारे समाज, हमारे दैनंदिन जीवन पर पड रहा है। तकनीकी क्रांति की वजह से मौजूद सामाजिक व्यवस्था बाज़ारवाद का समर्थन करती है।

बाज़ार एक संबन्ध है - पूँजीवादी संबन्ध हिन्दी साहित्य का समकालीन विमर्श बाज़ार और पूंजी के साथ एक तर्करहित रिश्ता कायम रखता है। हम देख सकते हैं कि बाज़ार की शक्तियों ने साहित्य की भूमिका और स्वरूप को बदल दिया है। संस्कृति का बाज़ार में माल के रूप में परिवर्तन होना पश्चिम में खूब विचार-विमर्श का विषय बन चुका है। औद्योगिक युग के चरम क्षणों में पश्चिमी एवं पूर्वी जगत ने यह सच समझ लिया कि संस्कृति एक उद्योग के रूप में ही संभव है। संस्कृति का पण्य के रूप में पुनरुत्पादन संस्कृति को जन-संस्कृति बनाता है।

साहित्यिक एवं कला के क्षेत्र में बाज़ारवाद प्रभुत्वशाली विचारधारा है। लेखन एवं कला-दीर्घाओं से इसका सीधा संबंध है। वर्तमान समाज में यह एक स्वीकार्य बात बन चुकी है कि दर्शक या पाठक इस रणनीति के हितचिंतक हैं। हिन्दी सिनेमा ने अपनी विशिष्ट भारतीय अस्मिता को भूमंडलीय पहचान में समाहित किया है। ऐसी बहुत सी फिल्में बनती हैं, जो नए बाज़ार और दर्शक को ध्यान में रखकर सृजित हैं। बाज़ारवाद ने लोगों की मनोवृत्ति को ऐसा बदल दिया है कि हर एक के लिए सबसे उदात्त और मूल्यवान बात बाज़ार-केंद्रित हो गई है।

1.4.4.4. विज्ञापन

समाज में विज्ञापन की पृष्ठभूमि रंगों एवं प्रकाश के प्रभावी ढंग के मेल से गढित हुआ है। प्रतीकों के संसार रूपांतरित करने में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। उपभोक्ता वस्तुएँ दरअसल एक भाषाई चिह्न-विज्ञान के ज़रिए हमारे व्यवहार को बदलता है। वस्तुओं से सामाजिक भेद अंतभुक्त हो जाते हैं। वस्तुओं के पीछे सक्रिय विचारधारात्मक शक्ति व्यक्तिगत इच्छाओं से संचालित नहीं होती, वह इच्छाओं की पूर्वरचना करती चलती है। विज्ञापन सबसे पहले, वस्तु के साथ व्यक्ति के संबन्ध बदल देता है। वह धीरे-धीरे 'ऑटो-सेडक्सन' का भाव पैदा करता है। इस मायने में समीक्षक डॉ. रवि श्रीवास्तव की राय है - "खुले अर्थ-तंत्रवाली बाज़ार व्यवस्था में चुनाव की छूट एवं पसंद की स्वतंत्रता एक मिथ है। वहाँ निजी पसंद न पसंद जैसी चीज़ नहीं होती है। वे पूर्वनिर्धारित हैं। उसका फैसला तो विज्ञापन एजंसियाँ करती हैं, चाहे वे दैनंदिन उपभोग की चीज़ें हो या चाहे हमारे सौंदर्यबोध को तुष्ट करनेवाली कला-दीर्घाएँ अथवा कोई फिल्म भी क्यों न हो।"[१६] विज्ञापनों की यह आम प्रवृत्ति है कि उसमें मनुष्य के हृदय के दुर्बल भावों का अनुचित लाभ उठाने की क्षमता है। इस सिलसिले में वह संप्रेक्षण की प्रक्रिया में मानवीय आवेगों को जाग्रत कर मनुष्य को उपभोक्ता बना देता है।

1.4.4.5. पॉपुलर कल्चर

सूचना-प्रौद्योगिकी के विकास ने सामाजिक व्यवस्था के ऐसे रूपों का विकास किया है जो समूची व्यवस्था पर आरोपित है। इसे 'पॉपुलर कल्चर' कहा

जाता है - जिसके विभिन्न प्रतिरूपों समाज में लोकप्रिय हो रहे हैं - मॉडल, विज्ञापन, धारावाहिक, डिज़ाइनर-नुमाइश आदि। इन कला प्रतिमानों की सफलता के कारण वस्तु की बिक्री में तेज़ होती है। बाज़ार तंत्र ने इन रूपों को उपयोग की दुनिया में पहूँचा दिया और सिद्धांत भी बनाया कि इन प्रतिमानों की मनोरंजन-क्षमता महत्वपूर्ण है। असल में पॉपुलर कल्चर गंभीर कला रूप को सतही बनाता है, और मनोरंजन का व्यापार करता है। उपभोक्ता पर इसका प्रभाव मनोरंजन के माध्यम से होता है। इस माध्यम की सभी प्रवृत्तियाँ सामाजिक युक्तियों का अंग बन जाती है। हकीकत ज़िदगी और विकास पूरी तरह बाज़ार के ऊपर निर्भर है।

पॉपुलर कल्चर एक ऐसी प्रक्रिया की उपज है जिसमें तकनीकी और वैज्ञानिक संगठनों और प्रशासनों के चिंतन और अनुभव का वर्चस्व है। यह माध्यमों के ज़रिए घटनाओं का उपभोक्ता पैदा करता है साथ ही मनोरंजन भी देता है। सामयिक समाज भीड का समाज है, उसकी संस्कृति भीड़ की संस्कृति है, और कला भी भीड की है। भीड के लिए निर्मित कला वैयक्तिक सपनों का ध्वंस करती है। इसका असर प्रभावक्षमता पर आधारित है। प्रभाव को महत्व देते हुए सभी विवरणों का तैयार किया जाता है। यह 'स्टीरियोटाइप' यथार्थ-प्रस्तुति को अपदस्थ कर देता है।

1.4.4.6. वृद्धपूँजीवाद

उत्तर आधुनिकता का एक परिदृश्य ही नहीं, एक शर्त भी है - वृद्धपूँजीवाद। यह बहुराष्ट्रीय निगमों का भूमंडलीकृत बाज़ार है। वृद्धपूँजीवाद साम्राज्यवाद का

नया चरण है। आलोचक बैजनाथ सिंहल के अनुसाार "वृद्धपूँजीवाद बहुराष्ट्रीय निगमों के पूँजीवाद से जुडा है और उन्ही में विकसित हुआ है और ऐसी स्थिति में अर्थ व्यवस्था का कर्मक्षेत्र, राष्ट्र-विशेष न होकर पूरा विश्व ही हो जाता है।"[१७] स्वयंचालकता, सेवाक्षेत्र की बढोतरी, श्रमिक शक्ति की कमी, उपभोग का आधिपत्य, उत्पादन के साधनों का आधिपत्य, प्रकृति के दोहन की होड आदि वृद्धपूँजीवाद का सार है। वृद्धपूँजीवाद में उत्पादक शक्तियों में गिरावट नहीं आती बल्कि उनके परजीवीपन और वेस्टेज में इजाफा होता है। वृद्धपूँजीवाद की आंतरिक अक्षमता यही है कि वह तीसरी तकनीकी क्रांति या, स्वयंचालकता क्रांति की तमाम संभावनाओं को पूरी तरह समझने में असमर्थ है। इस अक्षमता का कारण उत्पादक शक्तियों के 'वेस्टेज' या व्यर्थता में निहित है। यह बेरोज़गारी बढाती है, साथ ही बौद्धिक एवं नैतिक कमज़ोरी पैदा करती है। यह पूँजीवाद का संरचनात्मक संकट है। वृद्धपूँजीवाद अर्थात्, मीडिया-साम्राज्यवाद ने सामाजिक, राजनीतिक अर्थशास्त्र को बाज़ार के अर्थशास्त्र में बदल दिया है। यहाँ किसी भी समाज-व्यवस्था का सांस्कृतिक वर्चस्व नहीं होता, संस्कृति अपने आप में एक उत्पाद बन गयी है। सूचना-प्रौद्योगिकी संस्कृति का विकल्प बन गयी है।

1.4.4.7. बहुराष्ट्रीय निगम

नया साम्राज्यवाद बहुराष्ट्रीय निगमों का पूँजीवाद है। यह विश्व-पूँजीवाद है क्योंकि उसने राष्ट्रों की सीमाएं तोड दी हैं। प्रौद्योगिकी और बहुराष्ट्रीय निगमों का विकास साथ-साथ हुआ है। विकसित देश बहुराष्ट्रीय निगमों एवं सरकारों के ज़रिए

अविकसित देशों का नक्शा बदलने में समर्थ निकले हैं। आलोचक सुधीश पचौरी कहते हैं - "निगमों ने समाजों के भीतरी राग-रेशे में अपनी अनिवार्य पैठ बना ली है। शिक्षा में कंप्यूटर और व्यापारिक घरानों के प्रवेश से ही स्पष्ट है कि समाज में कितने गहरे बदलाव आ रहे है... स्वास्थ्य तो अब शुद्ध व्यापार है ही।"[१८] बहुराष्ट्रीय निगम अपनी पूँजी, अपनी तकनीक, अपने ब्रांड और संस्थानों से तो वातावरण में नया रद्दोबदल करते हैं, वे सर्वोपरी अपनी अनिवार्यता के विचार को विकल्पहीन स्थिति में बदल देते हैं।

बहुराष्ट्रीय निगम ने सत्ता का केंद्र बदल दिया है। वे सूचना और उसके विवरण के क्षेत्र में चले आये हैं। बहुराष्ट्रीय निगम का आधार इलक्ट्रॉनिक एवं अन्य तकनीकी क्रांति कहा जा सकता है। निगमों का मकसद है स्वयं कम से कम पैदा करके, अधिक मुनाफा कमाना। निगमों के मैनेजर दुनिया के लोगों को, ग्राहक या उपभोक्ता-मात्र समझते हैं। सूचना क्रांति ने इन बहुराष्ट्रीय निगमों को भूमंडलीय बनने में मुख्य भूमिका निभाई है। इसे नए साम्राज्यवाद या मीडिया साम्राज्यवाद भी कहा जा रहा है।

1.4.4.8. अतियथार्थवाद (Hyper Realism)

दार्शनिक बौद्रिआ ने 'छलना की बारात' में माध्यम द्वारा संदेश को 'तटस्थ' कर देने की 'क्षमता' की अवधारणा दी है 'प्रातिनिधिकता' की प्रक्रिया 'छलना' (simulacra) में बदल जाती है। यह छलना अयथार्थ का रूप नहीं लेती बल्कि 'बनी

हुई वस्तुओं' का सही रूप लेती है जो वास्तविक यथार्थ से ज्यादा यथार्थ होता है। यह नई स्थिति एक प्रपंच (Simulation) की तरह है। बौद्रिआ इसे अतियथार्थ कहते हैं। यह उक्त पूर्वनिश्चित स्थिति है यहाँ यथार्थ ही पुनर्निमित होने लगता है। यह हर माध्यम में अलग रूप से, अलग ढंग में होता है। यह इतना छलनामय होता है कि मूल यथार्थ गायब हो जाता है। यह समूचे सांस्कृतिक उपक्रम को बदल देता है। वस्तु से वस्तुगतता खत्म हो जाती है। टी.वी., वीडियो, विज्ञापन आदि अतियथार्थ हैं। इसमें गहराई, परिप्रेक्ष्य और संदेह का अभाव है। अतियथार्थवादी कला सबको अविशेष, अतिविवरणात्मक, अतिरूपात्मक, बनाती है।

यह अतियथार्थ पहले मॉडल गढता है, उनके बहुरूपी स्वांग को सत्य बनाता है। उनके भेदों को स्पष्ट करता है, फिर वे भेदीकृत रूप स्वतंत्र हो जाते हैं। यह बहुरूपीयापन (साइमुलेशन) फैलने लगता है, स्वीकृत होने लगता है। इसका अच्छा उदाहरण है 'फैशन'। फैशन एक विचार बन जाता है, जो सब तरफ हर अनुशासन में फैलता जाता है। राजनीति फैशन बन जाती है। 'सैक्स' फैशन बन जाता है। वर्तमान युग में फैशन 'जीवन की शैली' बन जाता है। फैशन के खास क्षणों में प्रतिमा का सृजन होता है। यह हीरो के लगातार दुहराए गए मूर्त रूपों का समावेश है। यह उपभोक्ता की कामनाओं को उकसाता है, उनमें एक वैचारिक माहौल बनाए रखते हैं जो प्रतिमा-पूजन में परिणत होते हैं।

1.4.5. उत्तर-औपनिवेशिक संदर्भ में हिन्दी साहित्य

भूमंडलीय पूँजीवाद और औद्योगिक क्रांति के दौरान तमाम सामाजिक संरचनाएँ और प्रतिमान बदल गए हैं। इस बदलाव ने संस्कृति और साहित्यिक पृष्ठभूमि में नए तेवर पेश किए। इस पृष्ठभूमि से उपजी समाज की विभिन्न ज्वलन्त समस्याओं को अभिव्यक्त करने में उपन्यास को ही सर्वाधिक प्रयोगशील साहित्यिक विधा मानी गयी है। सामयिक हिन्दी उपन्यासों में नारी विमर्श, दलित विमर्श वैश्वीकरण, उपभोक्तावाद, बाज़ारवाद, बहुराष्ट्रीय निगम, विज्ञापन आदि उत्तर औपनिवेशिक प्रवृत्तियाँ दिखाई देती है।

नारी की स्थिति और गति को केन्द्र में रखकर जीवन के विभिन्न पहलुओं को देखने की दृष्टि समकालीन हिन्दी उपन्यास की एक प्रवृत्ति रही है। नासिरा शर्मा का 'ठीकरे की मंगनी', मृदुला गर्ग का 'उसके हिस्से की धूप', 'कठगुलाब' और शशिप्रभा शास्त्री का 'मीनारें' और मेहरुन्नीसा परवेज़ का 'अकेला पलाश' आदि इस कोटि में आ जाते हैं।

'ठीकरे की मंगनी' में प्रस्तुत 'महरूख' नारी अस्मिता के कई सवालों को उठाती है। वह जन्म के समय की मंगनी के रिश्ते को तोडकर एक गांव में अध्यापिका बनकर, समाज के नारी संबन्धी प्रतिमानों पर प्रश्नचिह्न लगाती है। वह पुरुष आश्रितता एवं घर-परिवार को छोडकर अपना स्वावलंबी संसार रचती है। शादी न करने और अकेले रहने का निर्णय भी लेती है। लेखिका ने यहाँ मुस्लिम समाज की स्त्री विरोधी दृष्टि का पर्दाफाश करते हुए नारी के दर्द को वाणी दी है।

मृदुला गर्ग के 'उसके हिस्से की धूप' की 'मनीषा' अपनी अपरिपक्वता में पति को छोडकर प्रेमी के पास और आखिर उससे ऊब कर पति की सेवा में पुनः पहूँचती है। लेखिका ने आधुनिक स्त्री के त्रिकोणात्मक प्रेम के संघर्ष को बिलकुल नए रूप में प्रस्तुत किया है। 'कठगुलाब' में स्त्री के 'बोलडनैस' की अभिव्यक्ति है। स्त्री और पुरुष को भिन्न-भिन्न नज़रिया से देखने की सामाजिक प्रवृत्ति को यह उपन्यास बारीकी से आँकता है। मुख्य पात्र असीमा अपने बाप का 'हरामी नंबर एक' और भाई को 'हरामी नंबर दो' कहकर अपना 'बोलडनैस' व्यक्त करती है। उपन्यास की नायिकाएँ नारी स्वतंत्रता के पक्षधर हैं। वे परंपरागत ऋंखलाओं की संकीर्णताओं से मुक्त होकर पुरुष के अत्याचारों से अपने-आपको बचाना चाहती हैं। वे आत्मसम्मान एवं आत्मगौरव को किसी भी स्थिति में खोना नहीं चाहती हैं। यहाँ लेखिका ने नारी के बदलते रूप को प्रस्तुत करने के साथ और स्त्री-पुरुष संबन्धों को केन्द्रक बनाकर समाज की विभिन्न समस्याओं को विश्लेषित करने का यत्न किया है।

शशिप्रभा शास्त्री के 'मीनारें' में मैनेजमेंट से लेकर सामाजिक पेशेवर तत्वों के बीच महिला कॉलेज के प्राचार्य प्रेमा दीवान का चित्रण है। लेखिका ने शिक्षा-जगत में व्याप्त भ्रष्टाचार, गुंडागर्दी, राजनीतिक हस्तक्षेप आदि का पर्दाफाश भी किया है। मेहरुन्नीसा परवेज़ के 'अकेला पलाश' में मध्यप्रदेश का बस्तर क्षेत्र-सारी भौगोलिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विशेषताओं के साथ उपस्थित है। इसमें पुरुष द्वारा किए जानेवाले नारी-शोषण का मार्मिक चित्रण हुआ है।

हिन्दी उपन्यासकारों में स्थानीय बोध की उत्तर औपनिवेशिक प्रवृत्ति विद्यमान होती है। अपने इलाके की लघु संस्कृति को विश्वग्राम की लहर से बनाये रखने की चुनौती इनकी रचनाओं में दिखाई देती है। रवीन्द्र वर्मा का 'निन्यानबे' और ज्ञान चतुर्वेदी का 'बारामासी' इसके उदाहरण हैं।

'बारामासी' में बुंदेलखंड के 'अलीपुरा' के निम्न मध्यवर्गीय परिवार की आकांक्षाओं, सपनों, विडंबनाओं, विसंगतियों और पारिवारिक संबन्धों की विद्रूपताओं का अंकन किया गया है। यह उपन्यास बिन्नू के चारों भाइयों की उम्मीदों और यथार्थ के संघर्ष पर टिका है। अलीपुरा के जीवन का तर्क ताकत के संचय से जुडा है। उसके पात्रों की देहभाषा ही एक मात्र भाषा है। अलीपुरा भारत के उन गाँवों का प्रतीक है, जहाँ के लोग दाँव, धौंस से जीवन जीते हैं, तमंचा चलाते हैं, बैरी बनाते हैं, दूसरे की लडकी को छेडते हैं, अपनी बहन के लिए दूसरों की हत्या करते हैं। यहाँ के लोग नशा, गाली गलौज, बन्दूक, गोली, हत्या, तथा जेल को अपना आदर्श बनाते हैं।

'निन्यानबे' एक कस्बाई मध्यवर्गीय परिवार का मामूली जीवन और उसमें हुए मूल्यों के ह्रास की गाथा है। इसके एक छोर पर पिता 'रामदयाल' का आदर्शवाद है तो दूसरे छोर पर बेटे 'हरिदयाल' के भ्रष्ट चरित्र का अंकन किया गया है। सत्रह-अस्सी साल तक फैले कथानक में उस समय के राजनीतिक उतार-चढाव, बदलाव और उथल-पुथल को व्यंग्यात्मक लहजे में प्रस्तुत किया है। साथ ही उपभोक्तावाद का चित्रण भी उपन्यास में उपलब्ध है।

अब्दुल बिसमिलाह का 'मुखडा क्या देखें' में एक निम्नवर्गीय या दलित मुस्लिम परिवार की कहानी प्रस्तुत की गयी है। यह परिवार ज़मींदार के अत्याचार के कारण गांव छोडकर चला जाता है, पर कुछ वर्ष बाद वापस लौट आने को विवश होता है। लेखक ने गांव में होनेवाले दुःखद परिवर्तनों, विशेषकर वैश्वीकरण के मुद्दों को प्रस्तुत किया है।

वैश्वीकरण की सशक्त अभिव्यक्ति के रूप में अलका सरावगी ने 'कलिकथा वाया बाइपास' प्रस्तुत किया है। इस कथा में प्लासी युद्ध में अंगरेजों के साथ देनेवाले 'अमीचंद' से लेकर बाबरी ढांचा विध्वंस तक की कथा ही नहीं, लालू, राबडी, सोनिया और बहुराष्ट्रीय कंपनियों तक के प्रसंग भी आए हैं। बाज़ारवाद की भोगवादी मानसिकता से ग्रस्त नयी पीढी की असंवेदनशीलता का भी उपन्यास में संकेत किया गया है। बंगाल का विभाजन, कलकत्ते में हुए दंगे और साठोत्तर भारत की स्थिति आदि का जीवंत चित्रण इस उपन्यास में मिलता है।

मृणाल पांडेय के 'रास्तों पर भटकनेवाले' समकालीन उपभोक्तावादी युग में धन और सत्ता की दौड में मानवीय मूल्यों को बिलकुल दरकिनार कर देनेवाले पत्रकारों का चित्रण खींचा गया है। यह उपन्यास उत्तर आधुनिक उपभोक्तावादी समाज के घिन्नौने रूप का यथार्थ अंकन है।

भूमंडलीकरण की प्रमुख प्रवृत्ति के तौर पर मीडिया साम्राज्यवाद का जिक्र उल्लेखनीय है। कला, साहित्य और पत्रकारिता जगत् की नंगी सच्चाइयों की

अभिव्यक्ति में जगदीश चतुर्वेदी का 'कनॉट प्लेस' और 'कथा सर्कस' विशेष उल्लेखनीय है। 'कनॉट प्लेस' में एक युवक के लेखक के रूप में स्थापित होने की कथा के माध्यम से दिल्ली के साहित्यिक जगत के छद्म को उद्घाटित करने का प्रयास हुआ है। 'कथा सर्कस' में तरह-तरह के लेखक, जो शुद्ध साहित्य के साथ-साथ मीडिया के अन्य माध्यमों से भी जुडे हुए हैं, अपना करतब दिखाते प्रस्तुत हुए हैं। यह लेखकीय दुनिया भी पांखड मूल्यहीन और सुविधापरस्त और उपभोक्तावादी है। बाज़ारवाद की झलक यहाँ विद्यमान है।

भूमंडलीकरण के दौरान उपजी बाज़ारवाद, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, दलित विमर्श, नारी विमर्श आदि प्रमुख उत्तर औपनिवेशिक प्रवृत्तियाँ कमलेश्वर के 'कितने पाकिस्तान' में द्रष्टव्य हैं। उपन्यास में वर्तमान वैश्विक मानवीय संकट और उसके भविष्य के सिरे से भारत के सामंती इतिहास और पश्चिमी देशों के साम्राज्यवादी इतिहास और करतूतों के साथ संघर्ष दृश्यमान है। बाज़ारवादी संस्कृति की वजह से प्रदूषित लोक-संस्कृति का चित्रण इसमें हुआ है। उपन्यास ने बाज़ारवादी अपसंस्कृति से रूपायित सौदंर्यशास्त्र के मुद्दों को भी प्रस्तुत किया है। उपन्यास का शिल्प पक्ष भी उत्तर औपनिवेशिकता के अनुरूप है।

1.5. सुरेन्द्र वर्मा का रचनात्मक व्यक्तित्व

सुरेन्द्र वर्मा का जन्म ७ सितंबर १९४२ में झांसी में हुआ था। उन्होंने भाषा विज्ञान में एम.ए की उपाधी प्राप्त की है। आजकल वे मुंबई में रंगमंच और

फिल्मों में गहरी दिलचस्पी ले रहे हैं। वे एक प्रमुख साहित्यकार होने के नाते देश की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं के साथ सतत संपर्क में रहते हैं। नाटककार के रूप में वे अधिक प्रतिष्ठित हैं। उन्होंने अपने जीवन का काफी समय एन.एस.डी में व्यतीत किया है, इसलिए उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'मुझे चाँद चाहिए' का प्रमुख परिवेश एन.एस.डी. का है।

सुरेन्द्र वर्मा का संपूर्ण जीवन साहित्यिक भावबोध से भरा है पर वे ज्यादातर एकांत में ही समय व्यतीत करते हैं। वे किसी अनजान से मुलाकात नहीं करते, अपने मूड के अनुसार ही कार्यरत होते हैं। उनका अलग और निजी संसार हैं। वे मानते हैं कि उत्तमकोटि प्राप्त करने के लिए साहित्यकार को एकांत में रहना ही चाहिए। उनकी रचनाओं के सर्वेक्षण से हमें पता चलता है कि उनकी दृष्टि एकदम साहित्यिक है, यश के पीछे की नहीं। वे भाषा के जबरदस्त विद्वान हैं। वे एक साथ भारतीय परंपरा एवं पाश्चात्य साहित्य को आधार बनाकर रचना करते हैं। सुरेन्द्र वर्मा भारतीय परंपरा से विषय-वस्तु का चयनकर उसको आधुनिक समाज के अनुकूल पेश करते हैं। उन्होंने पौराणिक संदर्भ, परिवेश, पात्र आदि के माध्यम से सामयिक मुद्दों को अभिव्यक्त करने में अपनी दक्षता प्रकट की है। वर्माजी ने हिन्दी साहित्य की तमाम विधाओं कोअपनी प्रतिभा से संपन्न किया है जैसे नाटक, कहानी, उपन्यास, व्यंग्य, समीक्षा आदि। उनकी रचनाओं के विशिष्ट भाषिक प्रयोग वर्माजी की साहित्यिक संवेदना की निची विशेषता है।

1.5.1. नाटककारः सुरेन्द्र वर्मा किशोरावस्था से ही एन.एस.डी. से जुडे हुए हैं तथा सभी बडे नाट्य-मंचनकार से उनका गहरा संबन्ध है। उनको नाट्य लेखन के लिए केंद्रीय संगीत नाटक अकादमी ने १९९३ में सम्मानित किया। 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' को सर्वश्रेष्ठ नाटक के रूप में भारतेन्दु पुरस्कार भी मिला। साहित्य से गहरा संबंध रखनेवालों के लिए वर्मा जी का नाटक उत्तमकोटि का है। उनका साहित्यिक व्यक्तित्व अन्य साहित्यकारों से कुछ हद तक भिन्न है। उनकी रचनाओं में स्त्री-पुरुष संबन्धों की गहराई से छानबीन हुई है। वे अपनी रचनाओं में संभोग के सूक्ष्मातिसूक्ष्म संकेतों, अनुभवों तथा मुद्राओं का नाटकीय तथा प्रभावशाली वर्णन प्रस्तुत करते हैं। उनके नाटक एक दृश्यबंध को प्रकाश एवं अंधकार के माध्यम से, ध्वनि, संगीत, मौन एवं सन्नाटे के बल पर अनेक दृश्यबन्धों युक्त होने का आभास देने में समर्थ हैं। उन्होंने मंच ओर प्रेक्षागृह के नये प्रयोगों को पकडने का प्रयास भी किया है।

उनके कई नाटकों में कालिदास एवं कालिदास के साहित्य को विशिष्ट शैली में प्रस्तुत किया गया है। 'शकुंतला की अंगूठी', 'आठवाँ सर्ग', सूर्य की पहली किरण से अंतिम किरण तक' आदि इसके उदाहरण हैं। उनके नाटकों की भाषा में जीवन के अंतरंग क्षणों की अनुभूति को भाषाबद्ध करने का सफल प्रयास दिखाई पडता है।

1.5.2. व्यंग्यकारः सुरेन्द्र वर्मा का व्यंग्य-साहित्य सूक्ष्मता एवं गहराई के साथ किए गए शोध संशोधन का परिणाम है। उनकी प्रकाशित व्यंग्य कृति 'जहाँ बारिश न हो'

में १४ व्यंग्य लेख संकलित हैं। ये व्यंग्य लेख समकालीन जीवन की बहुआयामी विसंगतियों और विद्रूपताओं की अभिव्यक्ति हैं।

1.5.3. समीक्षकः मध्यप्रदेश के प्रसिद्ध कवि सुभाष दशोतर की कविताओं का मूल्यांकन करते हुए 'सुभाष दशोतर का मूल्यबोध' और 'देवराज के काव्य में मानवतावादी दृष्टि' जैसे लेख लिखकर उन्होंने अपने समीक्षक व्यक्तित्व को प्रमाणित किया है। 'प्रकर', 'नटरंग', 'आजकल' जैसी पत्रिकाओं में उनके विचारपूर्ण लेख प्रकाशित हुए है।

1.5.4. एकांकीकारः सुरेन्द्र वर्मा नाटकों के साथ कई एकांकी भी लिखे हैं, जो 'नींद क्यों रात भर नहीं आती' संग्रह में संकलित हैं। उनके एकांकियों में मानवीय संबन्धों और परिवार के विघटन के चित्रण मिलते हैं और उनके एकांकी स्त्री-पुरुष संबन्धों को भिन्न नज़रिए से प्रस्तुत करते हैं।

1.5.5. कहानीकारः सुरेन्द्र वर्मा की कहानियों को 'नई कहानी' के अन्तर्गत रख सकते हैं। इनकी कहानियों में अकेलापन, बदलते पारिवारिक संबन्ध, नई-पुरानी पीढ़ी के बीच की दरार, सामाजिक एवं मानसिक विसंगतियाँ, कुंठित मनोवृत्तियाँ आदि की अभिव्यक्ति हुई हैं। उनके दो कहानी संग्रह प्रकाशित हैं - 'इतना सुंदर जोडा' और 'यार की बातें तथा अन्य कहानियाँ'।

1.5.6. उपन्यासकारः उनके तीन प्रकाशित उपन्यास यों है - 'अंधेरे से परे', 'मुझे चाँद चाहिए' और 'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' जिसमें 'मुझे चाँद चाहिए' सबसे प्रतिष्ठित उपन्यास है जो केंद्रीय साहित्य अक्कादमी द्वारा पुरस्कृत है।

1.5.6.1. अंधेरे से परे

उत्तर औपनिवेशिक परिप्रेक्ष्य में सुरेन्द्र वर्मा कृत उपन्यास अंधेरे से परे की विशिष्ट पहचान है। इसमें विज्ञापन, मॉडल-फैशन, उपभोक्तावादी संस्कृति आदि उत्तर औपनिवेशिक प्रवृत्तियाँ विद्यमान है। उपन्यास के पात्र गुलशन और मधु उपभोक्ता संस्कृति के शिकार बन गये हैं। बिन्दो भोगवादी जीवन का प्रतीक बन गई है। गुलशन विज्ञापन में मॉडल के रूप में काम करनेवाली युवतियों से संपर्क रखता है। मधु, बिन्नी और नलिनी जैसी युवतियाँ विज्ञापन के क्षेत्र में काम करती हैं। पर पुरुष के साथ संबन्ध रखना इस व्यवसाय का हिस्सा बन गया है। तभी मधु एक जगह कहती है - 'वैसे मुझे विज्ञापन में सैक्स को लेकर शर्म नहीं आएगी, अगर लोग आंशिक नग्नता पर पैसे खर्च करने के लिए तैयार हों तो।' मॉडल बनने का रास्ता डिज़इनर और उद्योगपति के बेडरूम से होकर जाता है।

गुलशन विज्ञापन से जुडा है, बिंदो नारीमुक्ति का परिचायक है, जितन नौकरी ढूँढकर शिमला जाने को विवश है। परंपरा से स्वीकृत पारिवारिक संरचना को तोड कर अपनी मर्जी की स्वतंत्र परिवार रूपायित करने में सामयिक समाज उत्सुक दिखाई पडते हैं। वर्मा जी ने उपन्यास में उत्तर औपनिवेशिक परिप्रेक्ष्य में उपजी पारिवारिक जीवन के नए स्वरूप अभिव्यक्त किया है।

1.5.6.2. दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता

यह उपन्यास उपभोक्ता संस्कृति को एक विभिन्न नज़रिया से देखता है।

उपभोक्ता संस्कृति में अपनी किसी योग्यता को बाज़ार में बेचने की स्थिति प्रबल है। बाज़ार में ऊँची कीमत पाने के लिए देह को गन्ने की तरह निचोडने की स्थिति उपन्यास के पात्र नील और भोला द्वारा प्रकट होते हैं। नारी देह के बाज़ारीकरण के समकक्ष ही पुरुष देह का वाज़ारीकरण सामयिक समाज की प्रवृत्ति बन गई है। उपन्यास में पुरुष भी अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए 'पुरुष-वेश्या' बन जाता है। वैश्वीकरण के ज़रिए स्त्री-पुरुष के संबन्धों में आए बदलाव, नए समीकरण, रूढिगत नैतिक मूल्यों का विरोध आदि इस उपन्यास में प्रस्तुत मुद्दे हैं।

यहाँ बाज़ारीकरण से उपजि अपसंस्कृति का चित्रण उपन्यासकार ने मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त किया है। राजनीतिज्ञ और माफिया गिरोहों के साँठ-गाँठ का चित्रण, भोला के शिन्देभवन में किसी नेता को रुपये चुकानेवाले संदर्भ में व्यक्त होता है। इसके ज़रिए वे 'वीडियो पार्लर' या 'मसाज सेंटर' चलाते हैं। उपन्यास हमारी न्याय-व्यवस्था पर भी तीखा प्रहार करता है। पुलिस-तंत्र और न्याय-तंत्र की शिथिलता के कारण गुण्डे दिन-दहाडे अपराध कर खुले आम घूमते रहते हैं। उपन्यास में ऐसे कई मुद्दों को समावेश करते हुए वर्मा जी ने उपभोक्तावादी समाज की मानसिकता के साथ सफेदपोश अपराधी और माफिया के कारण पुष्टि पाए भ्रष्टाचार का चित्रण भी खींचा है।

1.5.6.3. 'मुझे चाँद चाहिए'

सुरेन्द्र वर्मा के इस बहुचर्चित उपन्यास का कैनवास इतना विशाल है कि इसमें शाहजहाँपूर के रूढिग्रस्त जीवन से लेकर दिल्ली बंबई जैसे महानगरीय जीवन

यथार्थ तक को बडी ही बारीकी के साथ रेखांकित हुआ है। इस उपन्यास में रंगमंच और फिल्मी जीवन के वास्तविक चित्र देखने को मिलते हैं। उपन्यासकार ने भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में कलाक्षेत्र पर मज़बूत होनेवाले बाज़ार तंत्र को उजागर करने का प्रयास किया है।

अस्तित्ववादी संहिता के साथ बाज़ारवादी पूंजी संहिता का आक्रमण, कलाकार के संघर्ष के रूप में प्रकट हुआ है। हर्ष-वर्षा एवं अन्य पात्रों द्वारा उपन्यासकार ने नाट्य शैली से उत्तर औपनिवेशिक संवेदनाओं का परिचय दिलाने का प्रयास किया है। आदि से अंत तक कालिदास एवं अन्य 'क्लासिकी' रचनाओं के उद्धरण के साथ उपन्यास की कथावस्तु को एक सीधी लकीर के समान आगे बढाई गई है। हर्ष ने कामू-चेखव के प्रसंग से कलाकार के संघर्ष का प्रतिनिधित्व किया है। वर्षा ने अपनी सौंदर्य-चेतना के उद्घाटन केलिए कालिदास को सहारा लिया है। पश्चिमी एवं पूर्वी का अपृथकीय मेल इन दो प्रमुख पात्रों के नाते पेश करने में उपन्यासकार ने सफलता पायी है।

उपन्यास के केन्द्रीय पात्र 'वर्षा' उत्तर औपनिवेशिक प्रवृत्ति का आईना बनकर उपस्थित होती है। वर्षा की पारिवारिक पृष्टभूमि में औपनिवेशिक एवं पुरुष वर्चस्व का काफी जिक्र होता है। परिवार के सदस्य इसका प्रतिरूप होकर पितृसत्तात्मक सौन्दर्यबोध का प्रतिनिधित्व करता है जो औपनिवेशिक वर्चस्व का प्रमाण है। कालिदास को कविकुल गुरु माननेवाले वर्षा का पिता पुरुषप्रधान सामंतवादी संस्कृति का परिचायक है। श्री मिश्रीलाल डिग्री कालेज की प्राध्यापिका मिस दिव्या

औद्योगिक समाज की वकालत करती है। औद्योगिक क्रांति का असर नारी एवं कला के परिप्रेक्ष्य में जो भूमिका अदा करती है यह एन.एस.डी. के वातावरण में चरमसीमा पाती है। औपनिवेशिक एवं पुरुष वर्चस्व कायम रखने में मशीनीकरण का संयोग कलाक्षेत्र में अतुल्य दायित्व निभाता है।

नारी एवं कला पर पुरुष-प्रधान समाज एवं औपनिवेशिकता दुहरा वर्चस्व लगाते हैं। वर्षा एवं रीटा, चारुश्री, अनुपमा, शिवानी आदि नारीपात्र इसके प्रमाण हैं। वर्षा बचपन से ही नारी अस्मिता को ढूँढती है। हाईस्कूल भरती के समय वह पुरुषप्रधान समाज द्वारा दिए गए अपने नाम से विद्रोह प्रकट करती है। उपन्यास कला के विभिन्न आयामों से मुठभेड करनेवाली नारी और उसकी चुनौतियों का पर्दाफाश करता है।

कला के बाज़ारीकरण प्रक्रिया के विभिन्न आयामों को खोलने में उपन्यास सफल निकलता है। विज्ञापन एवं सूचना माध्यम जिस प्रकार चित्रनगरी की धुरी पकडती है, इसका व्यापक मिसाल उपन्यास में उपलब्ध है। विज्ञापन के मुताबिक फिल्म की विजय या पराजय निर्धारित होती है। विज्ञापन, सामाजिक मूल्यों पर बदलाव लाता है। एक हद तक फिल्मी क्षेत्र में हर्ष की असफलता और वर्षा की सफलता का मापदंड विज्ञापन माना जा सकता है। वर्षा के प्राइवेट सेक्रेटरी पांडे भी इस क्षेत्र में सक्षम है, अक्सर वह वर्षा को भी सताता है। बाज़ारी संस्कृति से समझौता करने को विवश नारी का तनाव वर्षा के माध्यम से प्रकट हुआ है।

सूचना-प्रौद्योगिकी एवं बहुराष्ट्रीय निगम का अद्‌भुत समीकरण चित्रनगरी के परिवेश में प्रकट होता है। इसके अनुसार वर्षा, अपने परिवारवालों, रंगकर्मी, परिवार में सेवा करती झुमकी आदि की भी जीवन-शैली में बदलाव लाती है और वह ग्लैमर जीवन-शैली का परिचायक बन जाती है। बहुराष्ट्रीय निगमों के प्रभाव के कारण वर्षा को अपनी फिल्मों के पुनरावलोकन के वास्ते, यूरोप, लोस एजेंलस आदि जगह जाने का अवसर मिलता है और वह हॉलीवुड की सक्षम अभिनेत्री साबित होती है।

वर्षा अपने समझौतापरस्त व्यक्तित्व के कारण कलाक्षेत्र में काफी सफलता प्राप्त करती है इसके बजाय वह फिल्म जगत से ऊबकर नाटक के मंचन के लिए लौट जाती है। यह इसका प्रमाण है कि भूमंडलीकरण की प्रक्रिया का नतीजा अपनी संस्कृति की ओर वापस जाना होगा। वर्षा की अस्त-व्यस्त जिंदगी के बीच में भी वह माँ बनने पर, चाहे अनव्याही संबंध से पैदा हुआ हो, मातृत्व को स्त्रीत्व की परम उत्कर्ष स्थिति के रूप में साबित करने का प्रयास करती दिखाई पडती है। एक भिन्न दृष्टिकोण में यह उत्तर औपनिवेशिक युग भूमंडलीय संवेदनाओं का प्रतिबिंब है। यहाँ पारिवारिक संबन्ध में पति-पत्नी का एकसाथ रहना अनिवार्य नहीं माना जाता। परिवार की अवधारणाएँ एवं संवेदनाएँ बदल चुकी हैं। पुरुषप्रधान परिवार से मुक्ति ही नहीं, इसके बजाय 'सोलो' परिवार का गठन भी होने लगता है। यहाँ सुखवाद की परिकल्पना हमें झकझोरती है।

उत्तर औपनिवेशिकता का एक आयाम औपनिवेशिकता के पश्चात् उपनिवेशित देशों की कला, भाषा, साहित्य, संस्कृति आदि के स्तर पर हुए सशक्तीकरण का है तो दूसरा आयाम बाज़ारीकरण और उदारीकरण से उत्पन्न विश्वग्राम की संकलपना का है। दोनों स्तरों पर कला, समाज, परिवार, नारी और दलित संबन्धी विचारों की पुनर्व्याख्या और पुनर्रचना हुई हैं।

उत्तर औपनिवेशिकता ने समाज, कला और साहित्य की संरचनाओं को सूचना-प्रौद्योगिकी के अनुरूप ढाल दिया है। भूमण्डलीकरण और उदारीकरण ने राष्ट्र की ही नहीं, साहित्य, संस्कृति और कला की दीवारों को भी तोड डाला। पूँजीवादी उपभोक्तावादी सभ्यता की वजह से कला के केन्द्र में बाजार प्रविष्ट होने लगा। सौन्दर्यबोध की पुनर्परिभाषा हुई। उपनिवेशवादी सौन्दर्यदर्शन के स्थान पर बाज़ार और मीडिया से नियंत्रित कला के प्रतिमान निर्धारित हो गये। सौन्दर्य के इन बदलते प्रतिमानों पर सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों का नज़रिया क्या है, उसका समझना ज़रूरी होगा। उनके उपन्यास सभ्यता की लहरों के समानांतर नारी और कला के चिंतन पर हुए दिशा-परिवर्तनों को भी बारीकी से देखते हैं। सुरेन्द्र वर्मा भाषा विज्ञान के विद्वान होने के नाते सूचना प्रौद्योगिकी और बाज़ार तंत्र ने कला के माध्यम पर जो असर डाला है, उससे समझदार हैं। उनके उपन्यास भाषा के बाज़ारीकरण के मुद्दों को भी उठाते हैं। अतः शोध के दौरान सुरेन्द्र वर्मा का उपन्यास मुझे चांद चाहिए को प्रतिदर्श मानकर इन चार पक्षों का उद्‌घाटन करने का प्रयास किया जाएगाः

१. सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों में औपनिवेशिक सौन्दर्यबोध की अभिव्यक्ति।

२. सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों में उत्तर औपनिवेशिक सौन्दर्यबोध का चित्रण।

३. सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों में नारी विमर्श के बदलते स्वरूप।

४. सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों में उत्तर औपनिवेशिक भाषा।

इस उपन्यास का केन्द्र पात्र 'वर्षा' एक ओर सांमतवादी काल से लेकर मीडिया के युग तक चलते उस भारतीय नारी वर्ग की प्रतिनिधि है जो अपनी अस्मिता, आज़ादी और अधिकारों केलिए तडपती रही। वर्षा दूसरी दृष्टि से भारत जैसे उपनिवेशित राष्ट्रों की उस सौन्दर्य चेतना का प्रतीक है जो कई सभ्यताओं और आन्दोलनों की वजह से काफी विचलित हुई है। कला का लोकपक्ष क्षीण हो गया क्योंकि वह जनचेतना से कट गई है।

संदर्भ ग्रन्थ

१ जयप्रकाश, "नव उपनिवेशवाद और उसकी परिणतियाँ", अक्षद पर्व, अप्रैल २००८, ७

२ अवधेश कुमार सिंह, "उत्तर आधुनिकावाद, उत्तर उपनवेशवाद और भारत", आलोचना जनवरी - मार्च २००३, १४९

३ Bill Ascheroft et.al., The Empire Writes Back, Theory and Practice (New York: Routledge, 2002) 194
"Term post colonial refers to all the culture affected by the imperial process from the moment of colonization to the present day."

४ Ania Loomba, Colonialism/Post Colonialism (New York: Routledge, 2007) 26
"Post coloniality is the condition of the intelligentia of global capitalism"

५ Ania Loomba, Colonialism/Post Colonialism (New York: Routledge, 2007) 247
"If post modernism is the cultural logic of late capitalism it can be applied to post colonialism in its extended form."

६ Leela Gandhi, Post-colonial theory (New Delhi, Oxford University Press, 1998) 143
"Post colonialism is the term used to signify the cultural and historical globalisation of the tune."

७ डॉ. सुधीश पचौरी, आलोचना से आगे, (नई दिल्लीः राधाकृष्ण प्रकाशन प्र.लि. २०००), ८१

८ सुधीश पचौरी, उत्तराधुनिकता और उत्तर संरचनावाद, (दिल्लीः हिमाचल पुस्तक भण्डार, १९९४), ५५

९ Bill Aschroft, *et.al.*, Key Concepts of Post Colonial Studies (London: Routledge, 2001) 186
"The term has subsequently been widely used to signify the political, linguistic and cultural experience of societies that were former European colonies"

१० कृष्णदत्त पालीवाल, उत्तर आधुनिकतावाद की ओर, (दिल्लीः आर्यप्रकाशन मण्डल, २००५), ५०

११ डॉ. सुधीश पचौरी, आलोचना से आगे, (दिल्लीः राधाकृष्ण प्रकाशन प्रै.लि., प्र.सं. २०००), १९१

१२ विजयकुमार, "जाँक देरीदाः एक खतम न होनेवाली प्रश्नाकुलता", वागर्थ, दिसं. २००४, ७०

१३ Ania Loomba, Colonialism/Post Colonialism, (New York: Routledge, 2007) 26
"Post colonial theory shifts the focus from locatio nand institutions to individuals and their subjectivities. Post coloniality becomes a vague condition of people anywhere and everywhere and the specificities of locals do not matter"

१४ महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कडियाँ (दिल्लीः लोकभारती प्रकाशन, २००१) १०८

१५ Ania Loomba, Colonialism/Post Colonialism (New York: Routledge, 2007) 173
"Post colonial studies have been pre-occupied as the issues of hybridity, creolisation, diaspora and liminality with the mobility and cross over ideas and identies generated by colonisation"

१६ डॉ. रवि श्रीवास्तव, "उत्तर आधुनिक सौदंर्यबोध", मधुमति, अप्रैल-मई २००६, १२८

१७. डॉ. बैजनाथ सिंहल, उत्तर आधुनिकताः स्वरूप और आयाम, (पंचकुलाः हरियाना साहित्य अकादमि, २००३), ४४

१८. डॉ. सुधीश पचौरी, आलोचना से आगे, (नई दिल्लीः राधाकृष्ण प्रकाशन प्र.लि., २०००), ६१